मौद्रिक नीति
[MONETARY POLICY]

मौद्रिक नीति क्या है ?

साधारणतया मौद्रिक नीति सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की उस नियन्त्रण-नीति को कहा जाता है जिसके अन्तर्गत कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मुद्रा की मात्रा, उसकी लागत (अर्थात् ब्याज-दर) तथा उसके उपयोग को नियन्त्रित करने के उपाय किये जाते हैं। वर्तमान युग में जबकि मौद्रिक प्रबन्धन का उत्तरदायित्व केन्द्रीय बैंकों को सौंप दिया गया है, मौद्रिक नीति का संचालन भी केन्द्रीय बैंक का ही उत्तरदायित्व माना जाता है। मौद्रिक नीति का उपर्युक्त अर्थ मान लेने पर यह कहा जा सकता है कि **मौद्रिक नीति से अभिप्राय केन्द्रीय बैंक की साख-नियन्त्रण नीति से है**। परन्तु यह मौद्रिक नीति का एक संकुचित अर्थ है।

विस्तृत अर्थ में, मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुद्रा की मात्रा तथा लागत आदि को प्रभावित करने वाले मौद्रिक उपायों के अतिरिक्त ऐसी अमौद्रिक नीतियां और उपाय भी सम्मिलित किये जाते हैं जिनका प्रभाव देश की मौद्रिक स्थिति पर पड़ता है। **पॉल ऐनजिग** (Paul Einzig) के अनुसार, **मौद्रिक नीति में "वे सब मौद्रिक निर्णय तथा उपाय, जिनके उद्देश्य मौद्रिक हों अथवा अमौद्रिक तथा वे सब मौद्रिक निर्णय तथा उपाय जिनका उद्देश्य मौद्रिक प्रणाली पर प्रभाव डालना होता है, सम्मिलित होते हैं।"**[1] मौद्रिक नीति का विस्तृत अर्थ स्वीकार कर लेने पर कीमत तथा मजदूरी नियन्त्रण, व्यापार एवं निवेश नियन्त्रण तथा बेरोजगारी को समाप्त करने, बजट नीति तथा आय नीति सम्बन्धी वे अमौद्रिक उपाय भी मौद्रिक नीति में सम्मिलित किये जा सकते हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य मौद्रिक स्थिति को प्रभावित करना होता है। कुछ अर्थशास्त्री मौद्रिक नीति के अलग अस्तित्व को मानते ही नहीं, बल्कि इसे राजकोषीय नीति तथा ऋण प्रबन्धन (debt management) के साथ मिलाकर राष्ट्र की वित्तीय नीति (national financial policy) का ही एक अंग मानते हैं। परन्तु विश्लेषण के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि मौद्रिक नीति को अन्य आर्थिक नीतियों से स्वतन्त्र न मानते हुए भी इसका अध्ययन अलग से किया जाय।

मौद्रिक नीति अपना कार्य मुख्यतः मुद्रा की मात्रा में परिवर्तनों के द्वारा करती है। इससे मुद्रा के रूप में व्यक्त की जाने वाली उत्पादन की कुल माँग प्रभावित होती है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष हो सकता है, जैसा कि मुद्रा-परिमाण सिद्धान्त बताता है अथवा ब्याज-दरों के माध्यम से अप्रत्यक्ष, जैसा कि केन्स ने बताया है। इसकी दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। एक तो यह एक सामूहिक प्रभाव वाली नीति (aggregative policy) है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। अलग-अलग क्षेत्रों (sectors) अथवा आवंटनों (allocations) के लिए साख-नीति का प्रयोग किया जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि यह केवल माँग-पक्ष को प्रभावित करती है, वस्तु-बाजार में पूर्ति की स्थिति को नहीं, जबकि साख-नीति उत्पादन की पूर्ति को भी प्रभावित कर सकती है। इस प्रकार, मौद्रिक नीति को साख-नीति के साथ समन्वित करना आवश्यक होता है। मौद्रिक नीति के मुख्य अस्त्र साख-नियन्त्रण के उपाय ही होते हैं। इनका विस्तृत अध्ययन अध्याय 19 में किया गया है। ये उपाय प्रत्यक्ष होते हैं अथवा चयनात्मक (selective)। प्रत्यक्ष उपाय बैंक-दर परिवर्तन, खुले-बाजार की क्रियाएँ तथा रक्षित कोषानुपात में परिवर्तन करना है।

---

1 Paul Einzig : *Monetary Policy : Ends and Means*, p. 50.

Scanned with CamScanner

मौद्रिक नीति के उद्देश्य

मौद्रिक नीति के उद्देश्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों से भिन्न होते हैं। समय में परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन होते हैं जिनके परिणामस्वरूप आर्थिक नीति के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होते रहे हैं। **इसलिए मौद्रिक नीति के उद्देश्य भी अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग रहे हैं।** मौद्रिक नीति के उद्देश्यों पर अर्थव्यवस्था के स्वरूप, आर्थिक संगठन तथा विकास के स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। केन्द्रीय बैंक अथवा मौद्रिक अधिकारी को यह निर्णय करना पड़ता है कि मौद्रिक नीति का उपयोग करते समय किन उद्देश्यों को प्राथमिकता दी जाय। इस प्रकार की निर्धारित प्राथमिकताएँ देश की आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित होती हैं और समय-समय पर इनमें आवश्यक परिवर्तन करने पड़ते हैं। **स्पष्ट है कि एक ही समय पर अलग-अलग देशों में मौद्रिक नीति का प्रयोग अलग-अलग उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है।**

एक बात और ध्यान में रखने की यह है कि आर्थिक समस्याएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई होने के कारण बड़ी उलझी हुई होती हैं। अतः सम्भव है कि मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्य अल्पकाल में एक-दूसरे के असंगत (inconsistent) अथवा विरोधी (contradictory) हों। ग्रेट ब्रिटेन में रेडक्लिफ समिति (1959) ने बताया कि इन्हें सन्तुलन में लाने के लिए उचित प्रकार के समायोजनों की आवश्यकता होती है।

ग्रेट ब्रिटेन के लिए रेडक्लिफ समिति ने बताया है कि मौद्रिक नीति का उपयोग पाँच उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है : (1) रोजगार का एक ऊँचा एवं स्थिर स्तर, (2) मुद्रा की आन्तरिक क्रय-शक्ति में उचित स्थिरता (reasonable stability), (3) सुस्थिर (steady) आर्थिक विकास तथा जीवन-स्तर में सुधार, (4) अन्य देशों के आर्थिक विकास में योगदान के लिए, तथा (5) लन्दन के अन्तर्राष्ट्रीय कोषों को सुदृढ़ करने के लिए भुगतान-सन्तुलन में आधिक्य (margin) प्राप्त करने के लिए। अमरीका में मुद्रा एवं साख आयोग [Commission of Money and Credit (1961)] के अनुसार, मौद्रिक उपाय तीन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं : "आर्थिक विकास की पर्याप्त दर, बेरोजगारी का नीचा स्तर तथा कीमतों की उचित स्थिरता।"[1]

भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को ध्यान में रखते हुए मौद्रिक नीति का प्रयोग दो प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा सकता है : आर्थिक विकास को प्रोत्साहन तथा कीमतों में उचित स्थिरता। इन उद्देश्यों को मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य **'स्थिरता के साथ विकास'** (Growth with Stability) प्राप्त करना है। विकास के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि पर्याप्त मात्रा में मौद्रिक साधन उपलब्ध कराये जायें। स्थिरता के लिए आवश्यक है कि मौद्रिक साधनों की मात्रा तथा उनके उपयोग को उचित रूप में नियन्त्रित किया जाय ताकि इनका कीमतों पर कोई अनावश्यक दबाव न पड़े। मुद्रास्फीति का लक्ष्य निर्धारण मौद्रिक नीति संचालन के लिए एक आवश्यक संरचना प्रदान करता है, जिसके अन्तर्गत घोषित लक्ष्य की तुलना में भावी मुद्रास्फीति की प्रत्याशा से निर्णय लिये जाते हैं।

---

1 "Money and Credit : Their Influence on Jobs, Prices and Growth", *The Report of the Commission on Money and Credit*, 1961, p. 45.

Scanned with CamScanner

भारतीय मौद्रिक प्रणाली का अध्ययन करने के लिए दिसम्बर 1982 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रो. सुखमय चक्रवर्ती की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी थी। इस समिति द्वारा मई 1985 में प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट[1] में मौद्रिक प्रणाली के निम्नलिखित कार्य बताये गये हैं—(1) समाज की बचत जुटाना तथा बचतों की राशि का विस्तार करना; (2) राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों के अनुरूप बचतों का आबंटन अधिक उत्पादक उद्देश्यों के लिए करने की कार्यक्षमता बढ़ाना; (3) सरकार के उत्पादक कार्यों के लिए आवश्यक साधन जुटाने में सहायक होना; (4) कीमत-स्थिरता बढ़ाना; (5) कुशल भुगतान प्रणाली अभिप्रेरित करना।

स्वर्णमान व्यवस्था के अन्तर्गत मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य विनिमय-दरों में स्थिरता प्राप्त करना था। प्रबन्धित चलनमान के अन्तर्गत मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य आन्तरिक कीमत-स्तर में स्थिरता प्राप्त करना समझा जाता है। केन्स के समर्थक मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य पूर्ण-रोजगार की प्राप्ति में सहायक होना मानते हैं। वर्तमान अर्थशास्त्री मौद्रिक नीति का प्रयोग आर्थिक विकास के एक सहायक तत्व के रूप में करना चाहते हैं। उपर्युक्त सभी उद्देश्यों के विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह भी सुझाव दिया है कि मौद्रिक नीति का उद्देश्य मुद्रा को प्रभावहीन अथवा तटस्थ (neutral) बनाना होना चाहिए। स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति के द्वारा उपर्युक्त सभी उद्देश्य एक-साथ प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं, परन्तु अध्ययन की दृष्टि से इन सभी उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। हम मौद्रिक नीति के जिन उद्देश्यों का अध्ययन करेंगे वे इस प्रकार हैं—(1) मुद्रा की तटस्थता, (2) विनिमय-स्थिरता, (3) कीमत-स्थिरता, (4) पूर्ण-रोजगार, तथा (5) आर्थिक वृद्धि।

1. मुद्रा की तटस्थता (Neutrality of Money)

'तटस्थ मुद्रा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अंग्रेज अर्थशास्त्री **विकस्टीड** (P. H. Wickstead) ने किया था परन्तु इसका सविस्तार विवरण **प्रो. हायेक** (F. A. Von Hayek) ने अपनी पुस्तक *'Prices and Production'* में दिया है। **रॉबर्टसन** (D. H. Robertson) ने भी तटस्थ मुद्रा-नीति का ही समर्थन किया है।

तटस्थ मुद्रा का दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि आर्थिक असन्तुलन अथवा उतार-चढ़ाव मौद्रिक परिवर्तनों के ही परिणाम होते हैं। इस मान्यता का आधार यह है कि नयी मुद्रा का निर्माण करने से वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग तो बढ़ जाती है परन्तु उनकी पूर्ति में तत्काल वृद्धि नहीं होती है जिससे कीमतों में वृद्धि होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार, मुद्रा की मात्रा घटा देने पर वस्तुओं व सेवाओं की माँग घट जाती है जबकि उनकी पूर्ति में तत्काल कोई कमी नहीं होती है जिससे कीमतों में गिरावट आती है। मुद्रा के विस्तार अथवा संकुचन दोनों ही से माँग व पूर्ति का सन्तुलन बिगड़ जाता है।[2] **हायेक** के अनुसार, मुद्रास्फीति (inflation) तथा अवस्फीति (deflation) की परिस्थितियाँ तभी उत्पन्न होती हैं जब मुद्रा तटस्थ नहीं रहती है। इस प्रकार, आर्थिक अस्थिरता रोकने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि मुद्रा की मात्रा को पूर्णतः स्थिर रखा जाय। तटस्थ मुद्रा की विचारधारा के अनुसार मुद्रा की मात्रा इस प्रकार नियमित रखनी चाहिए कि कुल उत्पादन, कुल क्रय-विक्रय तथा वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतें वैसे ही रहें जैसे कि एक मुद्राविहीन समाज में होंगी। दूसरे शब्दों में, मुद्रा का प्रयोग केवल विनिमय-माध्यम तथा मूल्य-मापक के रूप में किया जाय ताकि वस्तु-विनिमय (barter) की असुविधाओं से बचा जा सके। इसके अतिरिक्त मुद्रा का उपयोग और किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न किया जाय। मुद्रा की तटस्थता के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में स्थिरता तथा सन्तुलन की स्थिति रहेगी और उसमें थोड़े से परिवर्तन केवल तकनीकी परिवर्तन आदि आधारभूत कारणों से प्रभावित होंगे।

आलोचना—मुद्रा की तटस्थता का विचार अबन्ध-नीति (*laissez-faire*) से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित है। अबन्ध-नीति पर आधारित अन्य आर्थिक सिद्धान्तों के समान तटस्थ मुद्रा-नीति भी इसके समर्थकों के मानसिक भ्रम का परिणाम है। इसकी मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) यह धारणा मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त पर आधारित है जिसके अन्तर्गत मुद्रा की मात्रा तथा कीमत-स्तर के बीच प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध समझा जाता है। परन्तु जैसा कि हम जानते हैं, मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त

---

1 *R.B.I. Report of the Committee to Review the Working of the Monetary System*, 1985.

2 "Creation as well as destruction of money spoil the equivalence of total supply and demand; they are the disturbing monetary germs injected into the economic body a monetary policy which is not neutral." —George N. Halm : *Monetary Theory*, p. 123.

Scanned with CamScanner

अनेक प्रकार से दोषपूर्ण हैं। इसलिए उस पर आधारित अन्य कोई सिद्धान्त अथवा विचार तर्कसंगत हो ही नहीं सकता है।

(2) तटस्थ मुद्रा का विचार इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा-परिमाण को पूर्णतः स्थिर रखना आर्थिक अस्थिरता से बचने का सर्वोत्तम उपाय है। परन्तु वास्तविकता यह है कि मुद्रा की स्थिरता की नीति का अनुसरण करने पर अवस्फीति तथा मन्दी का खतरा बढ़ जाता है। तकनीकी विकास (technological development) के परिणामस्वरूप उत्पादन की मात्रा तथा साधनों की उत्पादकता में वृद्धि होने पर व्यापार अथवा लेन-देन की मात्रा (*T*) में वृद्धि होती रहती है। ऐसी स्थिति में मुद्रा की पूर्ति को स्थिर रखने से अवस्फीति व मन्दी के खतरों का उत्पन्न होना तथा आर्थिक विकास का क्रम अवरुद्ध होना स्वाभाविक होगा।

(3) तटस्थ मुद्रा-नीति के समर्थकों का कहना है कि यदि तकनीकी तथा उत्पादन-प्रणाली आदि में विकास के परिणामस्वरूप उत्पादन बढ़ता है और कीमतों में गिरावट आती है तो यह स्थिति खतरनाक नहीं है। इस प्रकार से कीमतें गिरने पर लागतें भी गिरती हैं और इससे समाज के सभी वर्गों को औद्योगिक प्रगति का लाभ मिलता है। यह तर्क सैद्धान्तिक आधार पर तो दिया जा सकता है, परन्तु इसमें व्यावहारिकता का अंश बहुत कम है। लागतों में कमी के अनुसार कीमतों में तत्काल कमी हो जाना केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही सम्भव है और व्यावहारिक रूप में पूर्ण प्रतियोगिता केवल एक अवास्तविक मान्यता है। जैसा कि **प्रो. हेन्सन** ने बताया है, आधुनिक युग में व्यावसायिक संघों व एकाधिकारी संगठनों के कारण लागतों में कमी होने पर कीमतों में कमी होना सम्भव नहीं हो पाता है।[1] इसके अतिरिक्त, मुद्रा की स्थिरता व उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप यह भी सम्भव हो सकता है कि उन वस्तुओं की कीमतें न गिरें जिनकी उत्पादन-लागत गिरी है, बल्कि उन वस्तुओं की कीमतों में गिरावट आये जिनकी लागत में कोई कमी नहीं हुई है।

(4) व्यावहारिक रूप में, एक प्रावैगिक समाज में जहाँ अन्य सभी आर्थिक तत्व परिवर्तनशील हैं, मुद्रा की मात्रा को स्थिर रखना सम्भव नहीं हो पाता है। जनसंख्या, प्राविधिक ज्ञान, उत्पादन व व्यापार की मात्रा में वृद्धि होने पर मुद्रा की कुल माँग बढ़ जाती है और मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है।

(5) मुद्रा की तटस्थता का विचार एक वास्तविकता नहीं, बल्कि एक भ्रम है। मन्दी की स्थिति में जबकि मुद्रा की मात्रा स्थिर रहने पर भी कीमतों तथा उत्पादन में कमी होती है तो मुद्रा की मात्रा को बढ़ाकर कीमतों को नहीं बढ़ाया जा सकता है।

(6) तटस्थ मुद्रा की धारणा तथा इसके उद्देश्य में सैद्धान्तिक असंगति भी है। मूलतः यह दृष्टिकोण अबंन्ध-नीति तथा पूर्ण-प्रतियोगिता की मान्यताओं पर आधारित है। परन्तु मुद्रा अधिकारी द्वारा मुद्रा-परिमाण स्थिर रखकर अर्थव्यवस्था को मुक्त छोड़ देने से इस नीति का मूल उद्देश्य—कीमतों में स्थिरता—प्राप्त ही नहीं किया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति तो तभी सम्भव हो सकती है जब मुद्रा अधिकारी द्वारा अर्थव्यवस्था में अनेक असन्तुलनकारी तत्वों के प्रभावों को समाप्त करने के लिए मौद्रिक परिवर्तन की नीति अपनायी जाय।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि तटस्थ मुद्रा की नीति अव्यावहारिक है। इसके द्वारा न तो अर्थव्यवस्था में पहले से उत्पन्न असन्तुलन की स्थिति के उपचार का कोई उपाय मिलता है और न यही ज्ञात होता है कि विकासशील अर्थव्यवस्था को कैसे पूर्ण विकास की ओर ले जाया जा सकता है। मुद्रा एक सक्रिय आर्थिक तत्व है, इसकी निष्क्रियता का विचार अव्यावहारिक तथा अनुपयुक्त है।

2. विनिमय-दर की स्थिरता (Exchange Stability)

स्वर्णमान के युग में मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य विनिमय-दरों में स्थिरता तथा भुगतान-सन्तुलन में साम्यावस्था (equilibrium) बनाये रखना था। स्वर्णमान का अध्ययन करते समय हम देख चुके हैं कि विनिमय-दरों की स्थिरता बनाये रखने के लिए स्वर्णमान के अन्तर्गत आन्तरिक स्थिरता का परित्याग किया जाता था। भुगतान-शेषों में अस्थायी असन्तुलनों को आन्तरिक कीमत-स्तर, आय, रोजगार आदि में परिवर्तन करके ठीक करने का प्रयास किया जाता था। स्वर्णमान का स्वर्ण नियम यही था कि जब देश में स्वर्ण आ रहा हो तो मुद्रा-प्रसार करो और जब स्वर्ण देश से बाहर जाने लगे तो मुद्रा-संकुचन करना चाहिए। 1931 में इंग्लैण्ड में

1 A. H. Hansen : *Full Recovery or Stagnation*, pp. 78-79.

Scanned with CamScanner

मैकमिलन समिति (Macmillan Committee) ने भी आन्तरिक कीमत-स्थिरता की तुलना में विनिमय-दरों की स्थिरता को अधिक महत्वपूर्ण समझा था।

विनिमय दरों की स्थिरता को मौद्रिक नीति का उद्देश्य मानने के अनेक कारण थे; जैसे—(1) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व वित्तीय सम्बन्धों में स्थिरता बनाये रखना, (2) विदेशी मुद्राओं में सट्टे की प्रवृत्ति को रोकना, (3) अविश्वास के संकट (crisis in confidence) से बचना तथा पूँजी के बहिर्गमन को हतोत्साहित करना, तथा (4) भुगतान में साम्यावस्था बनाये रखना। विनिमय-दरों-की स्थिरता, निस्सन्देह, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्तुलित विकास में सहायक होती है। विनिमय दरों का अस्थिर रहना विशेषकर ऐसे देशों के लिए तो बहुत हानिप्रद होता है जिनकी अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार अथवा विदेशी निवेशों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मौद्रिक नीति का एकमात्र उद्देश्य विनिमय-दरों की स्थिरता बनाये रखना ही मान लिया जाय। ऐसा करने से अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। विनिमय-दरों की स्थिरता प्राप्त करने के लिए आन्तरिक आर्थिक स्थिरता को बलिदान करना पड़ता है, जबकि वस्तुतः किसी भी देश के लिए आन्तरिक आर्थिक स्थिरता व विकास की स्थिति बनाये रखना अधिक आवश्यक होता है। कीमतों में अस्थिरता की प्रकृति संचयी (cumulative) होती है। एक बार आर्थिक अस्थिरता का क्रम आरम्भ हो जाने पर इसकी गति निरन्तर बढ़ती ही जाती है। स्थिर विनिमय-दरें एक देश की आर्थिक कठिनाइयाँ दूसरे देशों तक विस्तृत कर देती हैं।

विनिमय-दरें भले ही पूर्णतः स्थिर न रखी जायें परन्तु उनकी निरन्तर अस्थिरता भी अनेक प्रकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। वर्तमान प्रबन्धित मुद्रामान के युग में विनिमय-दरों में उचित स्थिरता बनाये रखने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष (IMF) की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विनिमय-दरों में स्थिरता लाना था। राष्ट्रों द्वारा स्वतन्त्र रूप से निर्धारित की गयी विनिमय-दरों को वैधानिक मान्यता देने का मुद्रा-कोष का 9 जनवरी, 1976 का निर्णय इस संगठन की कमजोरी का प्रतीक है। यदि एक सुदृढ़ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-व्यवस्था के द्वारा विनिमय-दरों की स्थिरता का उद्देश्य प्राप्त कर लिया जाय तो मौद्रिक नीति का प्रयोग आन्तरिक आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जा सकता है।

3. कीमत स्थिरता (Price Stability)

मौद्रिक नीति के एक उद्देश्य के रूप में कीमतों में स्थिरता का महत्व वैसे तो प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् ही समझा जाने लगा था, किन्तु व्यवहार में उसका अनुसरण स्वर्णमान के परित्याग के बाद हुआ। **गस्टव कैसल** (Gustav Cassel) तथा **लॉर्ड केन्स** ने कीमतों की स्थिरता के उद्देश्य को विशेष महत्व दिया था। कीमतों में अस्थिरता के कारण रोजगार, व्यवसाय, उत्पादन, ऋणी तथा ऋणदाता के पारस्परिक सम्बन्ध आदि में अस्थिरता उत्पन्न होती है, जिससे अनावश्यक आर्थिक उतार-चढ़ाव और आर्थिक जीवन में अनिश्चितता बढ़ती है। इसीलिए बहुत से अर्थशास्त्रियों का यह स्पष्ट मत है कि मौद्रिक नीति का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा विवेकपूर्ण उद्देश्य कीमत-स्तर में स्थिरता बनाये रखना है। भारतीय सन्दर्भ में, **सुखमय चक्रवर्ती समिति** ने कीमत-स्थिरता प्राप्त करना मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य बताया है। मौद्रिक नियन्त्रण के द्वारा न केवल कुल माँग को नियन्त्रित किया जा सकता है, बल्कि मुद्रा तथा साख का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए बढ़ाया जा सकता है। अतः मौद्रिक अधिकारी द्वारा देश में चलन व साख की मात्रा को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाना चाहिए कि आन्तरिक कीमत-स्तर में कोई असाधारण परिवर्तन न होने पाये। कीमतों में स्थिरता का अर्थ यह नहीं है कि सभी प्रकार की वस्तुओं की कीमतें एक निश्चित स्तर पर स्थिर कर दी जायें। इसका अभिप्राय केवल सामान्य कीमत-स्तरों में उचित स्थिरता (reasonable stability) लाना है।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने कीमतों की स्थिरता के बजाय निरन्तर बढ़ती हुई अथवा निरन्तर घटती हुई कीमतों को पसन्द किया है। बढ़ती हुई कीमतों के समर्थक ऐसा सोचते हैं कि कीमतों में मन्द गति से वृद्धि होते रहने पर अर्थव्यवस्था में सक्रियता बनी रहती है, अर्थव्यवस्था को मन्दी तथा बेरोजगारी से बचाया जा सकता है, लाभ बढ़ते हैं जिनसे बचत, निवेश तथा उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता है। बढ़ती हुई कीमतों के विरोधी यह कहते हैं कि कीमतों में निरन्तर वृद्धि होते रहने पर उत्पादक भविष्य के सही अनुमान नहीं लगा पाते हैं, मुद्रास्फीति लगातार बढ़ती जाती है, अति-निवेश प्रोत्साहित होता है, सट्टेबाजी बढ़ती है तथा आगे चलकर अर्थव्यवस्था मन्दी जैसी

Scanned with CamScanner

स्थिति में फँस सकती है। दूसरी ओर घटती हुई कीमतों के समर्थक यह कहते हैं कि कीमतों में निरन्तर कमी की स्थिति उपभोक्ताओं के लिए लाभप्रद होती है, उत्पादकों से अधिक मजदूरी की माँग नहीं की जाती है, सट्टेबाजी के स्थान पर व्यावसायिक कुशलता को प्रोत्साहन मिलता है, आय के वितरण में असमानताएँ कम होती हैं तथा निर्यातों में वृद्धि और आयातों में कमी होती है। परन्तु ये तर्क भी निराधार हैं क्योंकि कीमतों में कमी का क्रम आरम्भ होने पर संचयी प्रकृति के कारण इसकी गति बढ़ती ही जायेगी जो कि अर्थव्यवस्था को मन्दी की स्थिति में धकेल देगी। मुद्रास्फीति तथा अवस्फीति अर्थात् बढ़ती हुई और घटती हुई कीमतों के बीच का रास्ता कीमतों में सामान्य स्थिरता बनाये रखने का है। मौद्रिक नीति के प्रयोग के द्वारा कीमतों को अन्य आर्थिक तत्वों के साथ समायोजित रखा जाय ताकि अर्थव्यवस्था में सन्तुलन की स्थिति बनी रहे।

आलोचना—कीमत-स्तर की स्थिरता को मौद्रिक नीति का उद्देश्य मानना जितना आकर्षक दिखायी देता है, व्यवहार में उसे कार्यान्वित करना अथवा उसकी प्राप्ति के लिए उपाय निश्चित करना उतना ही कठिन है। इसलिए बहुत से अर्थशास्त्रियों ने मौद्रिक नीति के कीमत-स्थिरता उद्देश्य की आलोचना की है।

(1) यह निश्चित नहीं हो पाता है कि कौन-सी कीमतों को और किस स्तर पर स्थिर रखा जाये। सामान्य कीमतों की स्थिरता वास्तविक स्थिति को व्यक्त नहीं कर पाती है, क्योंकि वह केवल एक औसत है। सामान्य कीमत-स्तर के स्थिर रहने पर भी सापेक्ष कीमतों (relative prices) में परिवर्तन होना सम्भव होता है जिससे उत्पादन तथा वितरण की स्थिति पर प्रभाव पड़ता है।

(2) एक समस्या यह उत्पन्न होती है कि थोक कीमतों, फुटकर कीमतों, जीवन-निर्वाह की लागतों, मजदूरी-दरों अथवा प्रतिभूतियों आदि की कीमतों में से कौन-सी कीमतों की स्थिरता को अधिक महत्व दिया जाय। **हाम (Halm)** जैसे कुछ अर्थशास्त्रियों ने उपभोग-पदार्थों की कीमतों में स्थिरता बनाये रखने का सुझाव दिया है, परन्तु अधिकांश अर्थशास्त्री इस प्रकार के सुझावों को अव्यावहारिक मानते हैं।

(3) अल्पकालीन कीमतों को मौद्रिक नीति के द्वारा स्थिर नहीं रखा जा सकता है क्योंकि उनमें परिवर्तन के अनेक अमौद्रिक कारण हो सकते हैं; जैसे—माँग व पूर्ति पर मौसमी प्रभाव, सट्टे की प्रवृत्ति आदि। दीर्घकालीन कीमत-स्तरों को भी मौद्रिक नीति के द्वारा तभी नियन्त्रित किया जा सकता है जबकि इनमें परिवर्तन मौद्रिक कारणों का परिणाम हों।

(4) कीमत-स्थिरता से उत्पादकों को प्रोत्साहन नहीं मिलता और आर्थिक प्रगति रुक सकती है।

(5) कीमतों में अस्थिरता आर्थिक अस्थिरता का कारण नहीं, बल्कि एक लक्षण मात्र होती है। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि कीमतों में स्थिरता लाकर आर्थिक स्थिरता प्राप्त की जा सके।

(6) उत्पादन की लागतों में कमी होने पर भी यदि कीमतों में स्थिरता बनी रहे तो अर्थव्यवस्था पर अनेक प्रकार के हानिकारक प्रभाव पड़ने की सम्भावना उत्पन्न होती है।

(7) कीमतों में परिवर्तन होने पर यह निश्चित करना कठिन होता है कि किन कीमतों में परिवर्तन होने पर अर्थव्यवस्था में सन्तुलनकारी अथवा असन्तुलनकारी प्रभाव उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी कीमतों में परिवर्तन अर्थव्यवस्था में सन्तुलन स्थापित करने में सहायक होते हैं।

(8) प्रो. हायक के अनुसार, कीमत-स्थिरता का उद्देश्य एक प्रावैगिक समाज की वास्तविक आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं देता है। उनका विचार है कि अमरीका में मन्दी की अवधि तथा तीक्ष्णता अन्य देशों की तुलना में अधिक थी, और इसका मुख्य कारण यह था कि अमेरिकी केन्द्रीय बैंकों ने मन्दी का मुकाबला करने के लिए कीमत-स्थिरता के उद्देश्य से मौद्रिक नीति का प्रयोग किया था। उन्होंने मौद्रिक नीति पर स्थिरतावादियों के बढ़ते हुए प्रभाव का विरोध किया है।[1]

वास्तव में मौद्रिक नीति का कीमत-स्थिरता उद्देश्य भी तटस्थ मुद्रा उद्देश्य के समान ही है। दोनों ही मुद्रा की निष्क्रियता पर आधारित हैं। अन्तर केवल इतना है कि कीमत-स्थिरता का उद्देश्य मुद्रा के मूल्य-मापक रूप को स्थिर करना चाहता है जबकि तटस्थ मुद्रा-नीति के अन्तर्गत मुद्रा की मात्रा को स्थिर रखने का उद्देश्य अपनाया जाता है। कीमत-स्थिरता का उद्देश्य, निस्सन्देह, महत्वपूर्ण है, परन्तु इसकी व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी कम नहीं हैं।

1 F. A. Von Hayek : *Monetary Theory and the Trade Cycle*, p.p. 18-22.

Scanned with CamScanner

हाल के वर्षों में अनेक केन्द्रीय बैंकों ने मुद्रास्फीति के स्पष्ट लक्ष्य निर्धारण की आवश्यकता को स्वीकार किया है। इसके फलस्वरूप मुद्रास्फीति लक्ष्य के अनुरूप इष्टतम नीतिगत नियम बनाने में रुचि उत्पन्न हुई है। इस प्रकार का नियम स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के जॉन टेयलर (John Taylor) द्वारा 1993 में विकसित किया गया है।

टेयलर नियम (Taylor Rule) एक सरल मौद्रिक नीतिगत नियम है जो सम्भावित क्षमता से वास्तविक उत्पादन और लक्ष्य मुद्रास्फीति से वास्तविक मुद्रास्फीति के विचलन की प्रतिक्रिया में अर्थ-व्यवस्था के लिए ब्याज-दर पथ निर्धारित करता है। यह एक सांकेतिक ब्याज-दर देता है जो उत्पादन की प्रवृत्ति से वास्तविक उत्पादन तथा लक्ष्य से मुद्रास्फीति को भार देने वाले प्रतिक्रिया फलन (reaction function) के अनुसार साम्य स्थिति से वास्तविक ब्याज-दर की गति दर्शाता है। अतः केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित की जाने वाली सांकेतिक ब्याज-दर = साम्य वास्तविक ब्याज-दर + वास्तविक मुद्रास्फीति दर + W_1 (उत्पादन अन्तराल) + W_2 (वास्तविक मुद्रास्फीति = मुद्रास्फीति लक्ष्य)। नियम के भार (W_1 तथा W_2) आर्थिक घटनाओं के प्रति मौद्रिक नीति की प्रतिक्रिया के विभिन्न तरीकों के सरलीकृत रूप हैं।

टेयलर नियम की अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। सैद्धान्तिक रूप से उत्पादन अन्तराल बहुत आकर्षक है, परन्तु व्यवहार में इसकी माप कठिन है क्योंकि सम्भावित वृद्धि के सम्बन्ध में काफी अनिश्चितता रहती है। साम्य वास्तविक ब्याज-दर के समुचित स्तर का निर्धारण भी कठिन है क्योंकि यह दीर्घावधिक प्रवृत्तिगत वृद्धि दर के समान होनी चाहिए। भारतीय सन्दर्भ में टेयलर नियम की प्रयोज्यता और भी सीमित है क्योंकि यहाँ मुद्रा बाजार अनेक खण्डों में बँटा हुआ है तथा कीमतों की माप के सम्बन्ध में सहमति का अभाव है। इस प्रकार कोई एक अकेला नीतिगत नियम अपनाने के बजाय नीतिगत दृष्टिकोण यह रहा है कि अनेक मात्रात्मक और दर परिवर्तियों की निरन्तर निगरानी के माध्यम से नीतिगत नजरिया निश्चित किया जाय। इसे प्रायः "बहुविधि सांकेतिक दृष्टिकोण" (multiple indicator approach) कहा जाता है।

4. पूर्ण रोजगार (Full Employment)

केन्सियन विचारधारा के प्रभाव में मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य पूर्ण-रोजगार की प्राप्ति करना है। आर्थिक स्थिरता के उद्देश्य को पूर्ण रोजगार के उद्देश्य से मिलाया जा सकता है ताकि देश के आर्थिक साधनों का अधिकतम उपयोग करना सम्भव हो सके।

पूर्ण रोजगार की धारणा भ्रामक विचार उत्पन्न करती है क्योंकि अर्थशास्त्रियों द्वारा इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गयी हैं। हम पूर्ण-रोजगार उस स्थिति को मानते हैं जिसमें देश में रोजगार चाहने वाले सभी व्यक्तियों को मजदूरी की प्रचलित दर पर रोजगार मिल सकता है और इसी प्रकार देश में उपलब्ध उत्पत्ति के अन्य साधनों का भी प्रयोग किया जाना सम्भव होता है। वास्तव में, पूर्ण रोजगार की स्थिति किसी भी पूँजीवादी देश में नहीं पायी जाती है, परन्तु इसे एक आदर्श बिन्दु मानकर प्रत्येक देश इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। मौद्रिक नीति का प्रयोग भी इसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है।

मौद्रिक नीति न केवल पूर्ण-रोजगार स्तर तक पहुँचने में सहायक हो सकती है, बल्कि यह स्तर प्राप्त कर लेने के पश्चात् अर्थव्यवस्था को इसी स्तर पर बनाये रखने के लिए भी प्रयोग की जा सकती है। हम देख चुके हैं कि केन्स ने इस बात को स्पष्ट किया है कि जब तक सभी आर्थिक साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं कर लिया जाता, निवेश की मात्रा बचतों की मात्रा से अधिक होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में मौद्रिक नीति का उद्देश्य निवेशों को प्रोत्साहित करना होगा। परन्तु पूर्ण रोजगार की सन्तुलन अवस्था में पहुँच जाने पर बचत तथा निवेश में समानता होना आवश्यक होगा, क्योंकि अब निवेश की मात्रा में वृद्धि उत्पादन में वृद्धि नहीं लायेगी, इससे केवल मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न होगी। **पूर्ण रोजगार के स्तर पर मौद्रिक नीति का उद्देश्य बचत तथा निवेश में सन्तुलन बनाये रखना है। क्राउथर** (Crowther) ने भी मौद्रिक नीति के उद्देश्य को महत्वपूर्ण समझा है।[1]

ड्यूसेनबेरी के अनुसार, पूर्ण-रोजगार की प्राप्ति के लिए प्रयोग किये जाने वाले अस्त्रों (instruments) में मौद्रिक नीति भी सम्मिलित है। मौद्रिक नीति का मुख्य कार्य एक ऐसी ब्याज-दर का निर्धारण करना है जो पूर्ण रोजगार स्तर पर बचतों एवं निवेश की माँग में समानता ला सके।[2] इस प्रकार की ब्याज-दर के निर्धारण के लिए

1 "……The obvious objective shouid be to attain an equilibrium between saving and investment at the point of full employment." —Crowther : *An Outline of Money*, p. 181.

2 J. S. Duesenberry : *Money and Credit : Impact and Control*, p. 77.

Scanned with CamScanner

यह भी आवश्यक है कि मुद्रा की मात्रा भी निर्धारित की जाय। रेखाचित्र 22.1 (a) में *S* रेखा पूर्ण-रोजगार स्तर पर बचत (full employment saving) के स्तर को व्यक्त करती है। *I* रेखा ब्याज की विभिन्न दरों से सम्बन्धित निवेश की माँग को दर्शाती है। *RO* ब्याज-दर पूर्ण रोजगार आय-स्तर पर निवेश को बचत के बराबर कर देती है। रेखाचित्र 22.1 (b) में *Yf* वक्र आय-स्तर के सम्बन्ध में मुद्रा की माँग को व्यक्त करता है। *OM* के बराबर मुद्रा की पूर्ति होने पर ही *RO* ब्याज-दर निर्धारित होती है जिससे पूर्ण-रोजगार स्तर पर बचत तथा निवेश की मात्राएँ समान हो जाती हैं। स्पष्ट है कि बचत तथा निवेश में समानता ब्याज-दर के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है और ब्याज-दर का स्तर मुद्रा की पूर्ति पर निर्भर करता है।

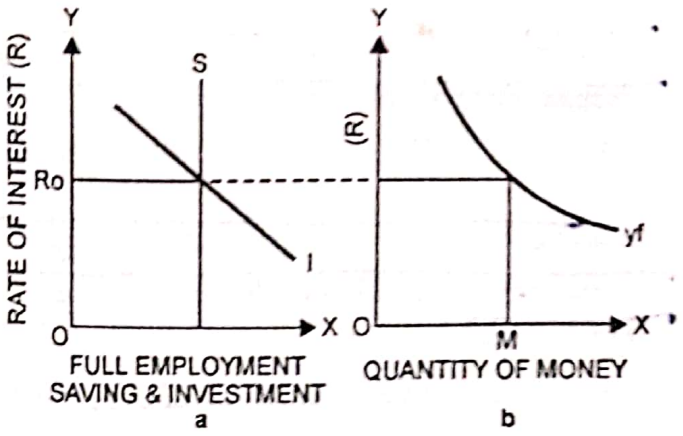

रेखाचित्र 22·1

हम यह देख चुके हैं कि बचत व निवेश में सन्तुलन पूर्ण-रोजगार तक पहुँचने के पूर्व ही हो सकता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि अर्थव्यवस्था को ऊँचे स्तर पर पहुँचा कर स्थिर रखा जाय। यही कारण है कि पूर्ण-रोजगार बिन्दु पर ही बचत-निवेश की साम्यावस्था को मौद्रिक नीति का उद्देश्य माना जाता है। इसके लिए उपयुक्त ब्याज-दर का निर्धारण एक साधन माना गया है। परन्तु व्यावहारिक अनुभव तथा मुद्रा सम्बन्धी सैद्धान्तिक विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक उच्च स्तर पर आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिए ब्याज-दर नीति बहुत प्रभावपूर्ण साधन नहीं है। व्यापारिक तेजी (boom) की स्थिति में सट्टेबाजी को रोकने की आवश्यकता होती है जिसे ब्याज-दर में परिवर्तनों के द्वारा नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है। ब्याज-दर का बार-बार बदलना उचित भी नहीं होता, क्योंकि सरकारी ऋण-व्यवस्था पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, चूँकि उत्पादन की कुल लागत में ब्याज एक बहुत थोड़ा भाग होता है, इसलिए व्यापारी तथा उद्यमी प्राय: ब्याज-दर को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

5. आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)

आर्थिक वृद्धि अथवा विकास का क्रम एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। कुछ वर्ष पूर्व तक यह सुझाव दिया जाता था कि मौद्रिक नीति का प्रयोग केवल अल्पकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही किया जाय ताकि अर्थव्यवस्था को चक्रीय परिवर्तनों से बचाया जा सके और आर्थिक स्थिरता बनाये रखी जा सके। परन्तु अब आर्थिक नीतियों का उद्देश्य उत्पादन तथा आय में निरन्तर वृद्धि करना समझा जाने लगा है ताकि लोगों के जीवन-स्तर में निरन्तर सुधार होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मौद्रिक नीति का प्रयोग करना आवश्यक समझा जाने लगा है। रेडक्लिफ समिति (Radcliffe Committee, 1959) के अनुसार, सरकार द्वारा अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपनाये गये मौद्रिक उपाय आर्थिक वृद्धि की दर को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार रेडक्लिफ समिति ने मौद्रिक नीति का आर्थिक वृद्धि पर पड़ने वाला प्रभाव एक संयोग मात्र माना था। परन्तु मुद्रा एवं साख पर अमेरिकी आयोग (U. S. Commission on Money and Credit) ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि आगे आने वाले वर्षों में मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक वृद्धि हो और चक्रीय स्थिरता को इससे कम महत्व दिया जाय।[1] **वुडवर्थ** (Woodworth) के अनुसार, वृद्धि के उद्देश्य को प्राथमिकता देना इसलिए आवश्यक है कि पाश्चात्य देशों में जीवन-स्तर में अभूतपूर्व सुधार हो जाने के बावजूद भी गरीबी विश्व की मुख्य समस्या है और स्वतन्त्र आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं की नीति में आर्थिक वृद्धि का उद्देश्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[2]

एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि हो तथा वस्तुओं एवं सेवाओं की बढ़ती हुई पूर्ति के साथ-साथ इनकी माँग में भी वृद्धि हो। मौद्रिक नीति

1 "During the decades ahead, growth should be the predominant aim, cyclical stabilization a subordinate yet important aspect." —U. S. Commission on Money and Credit, *op. cit.*

2 G. W. Woodworth : *The Money Market and Monetary Management*, p. 210.

Scanned with CamScanner

का प्रयोग इस प्रकार की पूर्ति तथा माँग में सन्तुलन प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि मुद्रा-नीति लचीली हो जिसका उद्देश्य मुद्रा की मात्रा में इसकी माँग के अनुसार परिवर्तन करते रहना हो। यह भी आवश्यक है कि मौद्रिक नीति के प्रयोग के द्वारा बचत एवं निवेश के प्रोत्साहन के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया जाय। बढ़ती हुई कीमतें भले ही निवेश को प्रोत्साहित करती हों, परन्तु बचतों को प्रोत्साहन कीमतों में स्थिरता रहने पर ही मिलता है। इस प्रकार मौद्रिक नीति का सफल संचालन विस्तार एवं संकुचन अथवा विकास एवं स्थिरता के बीच उपयुक्त सन्तुलन प्राप्त करने पर निर्भर करता है।

अर्द्ध-विकसित देशों की मुख्य समस्या अल्पकालीन उतार-चढ़ाव को रोकने के बजाय दीर्घकालीन संरचनात्मक (structural) परिवर्तन लाने की है, इसलिए मौद्रिक नीति का आवश्यक उद्देश्य आर्थिक विकास में सहायक होना है। परन्तु **हावर्ड एलिस** (Howard Elis) जैसे अर्थशास्त्रियों का मत है कि यदि अर्द्ध-विकसित देशों में सक्रिय रूप से मौद्रिक नीति का प्रयोग किया जाता है तो मुद्रास्फीति बढ़ने की सम्भावना रहती है जिससे मौद्रिक नीति का विकास सम्बन्धी उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है।[1] दूसरी ओर **ह्विटलसी** (Whittlesey) का कहना है कि जब सामान्य आर्थिक नीति का उद्देश्य आर्थिक वृद्धि को प्राप्त करना है और मौद्रिक नीति सामान्य आर्थिक नीति का ही अंग है तो इसका उद्देश्य भी यही होना चाहिए।[2] वास्तव में, **यदि आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ स्थिरता को भी उद्देश्य मान लिया जाय तो यह विवाद समाप्त हो जाता है।**

आर्थिक विकास के लिए मौद्रिक विस्तार की आवश्यकता होगी। परन्तु मौद्रिक नीति के प्रयोग के द्वारा कुल मौद्रिक माँग तथा वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति में सन्तुलन बनाये रखना होगा ताकि मौद्रिक नीति विकास में सहायक होते हुए भी अस्थिरता उत्पन्न न करे। इसे **'नियन्त्रित विस्तार'** (controlled expansion) की नीति भी कहा जा सकता है। विकास एवं स्थिरता के उद्देश्यों को एक-साथ प्राप्त करने के लिए लचीली (flexible) मौद्रिक नीति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की नीति के द्वारा बचत और निवेश में वृद्धि के लिए एक अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। भारतीय रिजर्व बैंक की साख-नियन्त्रण नीति का अध्ययन करते समय हम देख चुके हैं कि **'स्थिरता के साथ विकास'** (Growth with Stability) का उद्देश्य ही सामने रखा गया है।

Scanned with CamScanner